वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

मुमुक्षुजीवोंके परम तारणहार, पंचमकालमें अध्यात्म अमृतकी वर्षा करनेवाले निष्कारण करुणाशील सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के समाधिदिन (चैत सुदि पांचम) पर उनके चरणोंमें कोटी कोटी वंदन

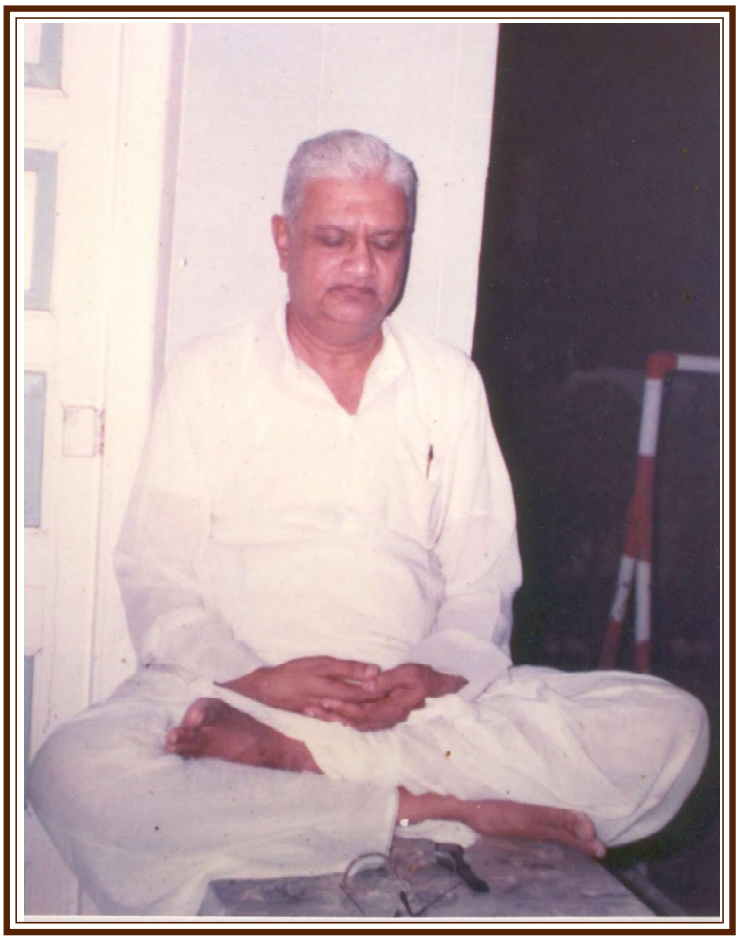

हे परमकृपालु देव जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखों का अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुष का मूलमार्ग आप श्रीमान ने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकार का प्रत्युपकार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, फिर आप श्रीमान कुछ भी लेने में सर्वथा निःस्पृह हैं, जिससे मैं मन, वचन, काया की एकाग्रता से आपके चरणारविंद में नमस्कार करता हूँ। आपकी परम भक्ति और वीतराग पुरुष के मूलधर्म की उपासना मेरे हृदय में भवपर्यंत अखण्ड जागृत रहे, इतना माँगता हूँ, वह सफल हो। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०३, वर्ष-२५, मार्च-२०२३

श्रावण शुक्ल ३, गुरुवार, दि. २१-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९६ प्रवचन-४०

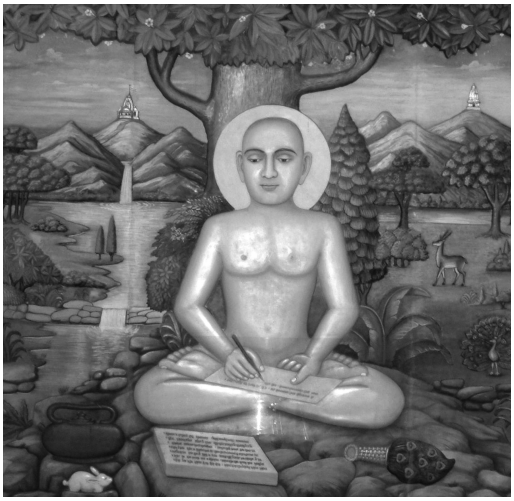

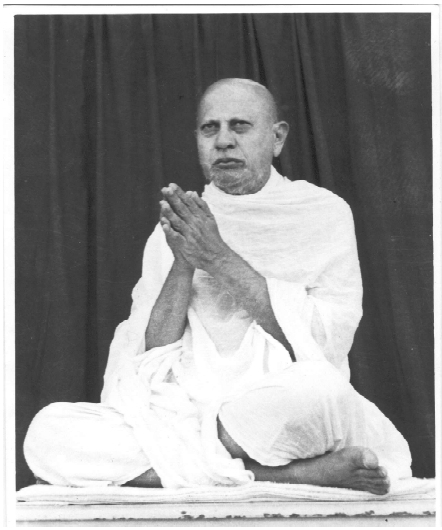

कहते हैं, भाई! तू स्वयं परमात्मा है न! अन्दर में सम्पूर्ण शुद्ध है। तू ढूँढ़ने कहाँ जाता है? कहीं सम्मेदशिखर में है भगवान? शत्रुञ्जय में है? मन्दिर में है? मूर्ति में है? कहाँ है तेरा भगवान? आहा...हा...! मेरो धनी है... आता है न अपने? (समयसार नाटक) 'दूर देशान्तर'... क्या (है)? 'मोही में है मोको'... कितना पृष्ठ है? बन्ध अधिकार, परन्तु पृष्ठ कितने? पृष्ठ का पता नहीं होता। आया... आया।

केई उदास रहैं प्रभु कारन, केई कहैं उठि जांहि कहींकै।
केई प्रनाम करैं गढि. मूरति, केई पहार चढैं चढि. छींकै।।

यह तो शुभभाव है, इतना। बाकी वहाँ भगवान नहीं, तेरा भगवान तो यहाँ है।

केई कहैं असमानके ऊपरि, केई कहैं प्रभु हेठे जमींकै।
मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मोहीमें है मोहि सूझत नीके।। ४८।।

मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मोहीमें है मोहि सूझत नीके।। देखो, यह बनारसीदास ने क्या कहा यह, 'मोहि सूझत नीके'। अरे भगवान! तेरा तुझे पता नहीं पड़ता, यह तो कोई बात है? अरे! यह तू क्या अन्धा है? कहाँ न हमें तो इसमें प्रत्यक्ष होने का ही गुण है। अनादि-अनन्त गुण है।

मुमुक्षु - यह काल इसे रोकता है।

उत्तर - काल कब इसे रोकता था? काल, काल के घर रहा। यह भी इसमें बहुत जगह कहा है? दिवस और पहर वह घड़ी मेरी-मेरी ऐसा कहा है, एक जगह, हाँ! दिवस घड़ी उसके घर रही। वह कहाँ है? यह भाई बहुत गाते... दामोदर लाखानी, यह मेरा पहर और यह मेरा दिन। दिन और पहर तो वहाँ रहे, यहाँ कहाँ अन्दर में आ गये हैं? समझ में आया? ऐसा आता है। मोहीमें है मोहि सूझत नीके।। बन्ध अधिकार, ४८वाँ है, बनारसीदास!

अरे...! भगवान तेरा तेरे पास है, बापू! कहीं ढूँढने जाये तो वहाँ से मिले ऐसा नहीं है परन्तु न हो उसमें से कहाँ से मिलेगा? हो उसमें से मिले या न हो उसमें से मिलेगा? आहा...हा...! इतना बड़ा मैं! इसे जमता नहीं। रंक हो गया, रंक - भिखारी। ऐसा हूँ! ऐसा मैं!

एक छोटी उम्र का बनिये का लड़का था, उसका पिता पच्चीस करोड़ रुपया छोड़ गया... पच्चीस करोड़! ननिहाल में... इसको महीने में सौ रुपये दें, खाने-पीने का तो हो ही, जेब में सौ रुपये। फिर यह बड़ा हुआ तो इसे लगा कि मेरे तो लोग अच्छे हों, यहाँ कहीं खाने-पीने जाना हो, मित्र मुझे जिमाते हैं तो मुझे भी जिमाना चाहिए, मुझे अधिक (पैसा) चाहिए। दूसरा व्यक्ति कहता है परन्तु यह सब पच्चीस करोड़ तेरे हैं, यह तो... हैं। है...! हाँ, तैयार होकर मालिक हो।

इसी प्रकार इस आत्मा में महानिधान पड़ा है, उसका यह स्वामी आहा...हा...! पता नहीं है, बालक की तरह इसे पता नहीं है। थोड़ा पुण्य करे और थोड़ा राग मन्द करे और कुछ किया तो (ऐसा माने कि) ओ...हो...! हमने बहुत किया। यह हमारी पूँजी, यह हमारी पूँजी। यह (पूँजी) नहीं। समझ में आया?

दो बातें की, हाँ! एक ओर आत्मा है तथा एक ओर रागादि विकारादि पर है। इन दोनों को जाने तो इसका आश्रय लेकर उस परभाव को छोड़े, दो को जाने बिना एक का आदर करना और एक को छोड़ना... ज्ञान तो दोनों का चाहिए - ऐसा कहते हैं। उसमें कहा था अकेले आत्मा का ज्ञान... फिर इसमें दो साथ में लिये। भगवान आत्मा जितनी शुद्धि तुझे प्रगट करनी है, वह सब शुद्धि तेरे सत्व में सत्व में सत्व में पड़ी है। ऐसे आत्मा को जानने से रागादि विकारादि पुण्य-पाप के भाव पर हैं - ऐसा जानकर इसकी ओर ढलने से वे छूट जाएँगे। परभाव को छोड़ना उन्हें जानकर छोड़ना और इसे जानकर आदर करना - ऐसी दो बातें हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

और परभाव का त्याग नहीं करता... सो सयल सत्थइं जाणिइ भले सर्व शास्त्रों को जाने तो भी मोक्ष के सुख को नहीं प्राप्त करता। शास्त्र का पठन... बहुत क्षयोपशम... बहुत क्षयोपशम... क्षयोपशम... क्षयोपशम समुद्र जैसा, परन्तु भगवान जाना नहीं और राग को पृथक् करके छोड़ा नहीं (तो) क्या जाना?

मुमुक्षु - शास्त्र पढ़ने से संवर-निर्जरा होती है, फिर किसलिए निकाले?

उत्तर - अरे...! भगवान! यह तो शास्त्र में आता है। स्वाध्याय करते हुए ज्ञानी को असंख्यगुणी निर्जरा होती है - ऐसा धवल के पहले भाग में आता है परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि शास्त्र सन्मुख का जो विकल्प है, उससे भी संवर निर्जरा (होते हैं)। ऐसा नहीं है। उस समय उसका घोलन अन्तर सन्मुख ढलता है। समय-समय में मुख्य निश्चय तरफ ही परिणति हो गयी है। उसे इस शास्त्र के स्वाध्याय काल में विकल्प तो जो है, वह तो पराश्रय पुण्य का कारण है, परन्तु उस समय स्वभाव सन्मुख का जितना झुकाव है, उतनी निर्जरा है। वह निर्जरा है। शास्त्र स्वाध्याय के विकल्प से निर्जरा हो, तब तो तैंतीस सागर तक सर्वार्थसिद्धि के देव को बहुत निर्जरा होनी चाहिए। (उसका) गुणस्थान बदलता नहीं, चौथे का चौथा रहता है। तैंतीस सागर तक स्वाध्याय (चले) और अन्त में वह भी ऐसा कहे कि अरे... यह विकल्प छूटे (और) स्थिरता हो उस दिन हमारे निर्जरा विशेष होगी। आहा...हा...! यह मनुष्यपना पायेंगे...

हमारे गुणस्थान की दशा स्वर्ग में बढ़ती नहीं है। पुण्य बहुत, पुण्य बहुत न! जहाँ पानी का प्रवाह हो, वहाँ कोई खेती की जा सकती है? बीज डले किस प्रकार अन्दर? टिके किस प्रकार? ऐसे ही सम्यग्दर्शन होने पर भी पुण्य का प्रवाह बहुत है, पुण्य का प्रवाह बहुत है, इसलिए स्थिरता का बीज वहाँ नहीं रह सकता। समझ में आया? नारकी में क्षार जमीन है, जैसे क्षार जमीन में बीज उगता नहीं और पुण्य के प्रवाह में बीज उगता नहीं, ऐसे ही पुण्य के प्रवाह में पड़े हुए देव, स्वरूप की स्थिरता नहीं कर सकते। नारकी में पाप किये वे अन्तर की स्थिरता नहीं कर सकते। सम्यग्दर्शन तक कर सकते हैं। समझ में आया? वह भी अन्त में तैंतीस सागर स्वाध्याय करके... तैंतीस सागर अर्थात् क्या? आहा...हा...! दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम, एक पल्योपम के असंख्य भाग में, असंख्य अरब वर्ष।

मुमुक्षु - गिनती में पकड़ में नहीं आते।

उत्तर - परन्तु अनन्त काल हुआ, बापू! यह तो आदि रहित काल है, असंख्यात अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त (काल) कहाँ रहा, कहाँ रहा, कहाँ रहा? तू है न? है या नहीं? है उसकी अस्ति कहाँ रही? रही कहाँ? देखो न! ऐसा आदि रहित काल में भटकते भव में कहाँ भटका? कहाँ कितना (काल रहा) इसका पता है। ऐसे अनन्त काल के समक्ष यह तैंतीस सागर तो कहीं अनन्तवें भाग है। इस तैंतीस सागर में एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम (होते हैं) और एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग में असंख्यात अरब वर्ष... इतनी स्वाध्याय करते हैं - ऐसा यहाँ कहना है परन्तु वह गुणस्थान बदलता नहीं। यदि अधिक निर्जरा होती हो तो गुणस्थान बदलना चाहिए। इसमें समझना आया? बहुत निर्जरा होवे तो (बदलना चाहिए)। चौथे का चौथा रहता है। अन्तर की एकग्रता के बिना निर्जरा नहीं हो सकती। पुण्य-बन्धन बहुत करता है।

मुमुक्षु - शास्त्र का अर्थ करने में।

उत्तर - वहाँ शास्त्र का अर्थ करने में... क्या धूल? यह सब समझे बिना के अर्थ करते हैं। सच्ची दृष्टि मिली नहीं और उस दृष्टि के बिना शास्त्र का अर्थ करते हैं। 'जन्मान्ध का दोष नहीं आन्तरो, जाति अन्ध को दोष नहीं आन्तरो, जो नहीं जाने अर्थ...' अन्धा अर्थ क्या जाने? 'मिथ्यादृष्टि रे तेथी आतरो, करे अर्थ न रे अनर्थ।' आहा...हा...! वस्तु का जो निश्चय स्वरूप है, व्यवहार स्वरूप है, जैसा उसका अर्थ होना चाहिए, उस प्रकार न करे वह तो कहते हैं 'जाति अन्ध करता मिथ्यादृष्टि आतरो छे, करे अर्थना अनर्थ।' अरे...! वीतराग की पैढी पर बैठकर, वीतराग मार्ग की पैढी पर बैठकर वीतराग के नाम से उल्टे अर्थ करके चलावे बापू! बहुत जवाबदारी है, भाई! बहुत जवाबदारी है, बापू! यह तुझे अभी नहीं लगती। आहा...हा...! वीतराग का मार्ग स्व आश्रय से शुरु होता है। पराश्रय से लाभ मनावे, भाई! वह वीतरागमार्ग नहीं है। तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जिसने आत्मा को जाना, वह परभाव को भी जानता है, परन्तु जानकर न छोड़े तो यह शास्त्र क्या जाना उसने? राग और विकार मेरे स्वभाव से भिन्न हैं - ऐसा जब भिन्नपना जाना और एकत्वपना रखे तो उसने जाना क्या? समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि परवस्तु को, राग-द्वेष को छोड़ता है। अज्ञानी अनादि से कर्मचेतना में ही लीन है, उसे आत्मा के स्वभाव का भान नहीं है।

मैं तो परमवीतरागी ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य का धारक कर्म-कलंकरहित परमात्मा हूँ। ऐसा उसने ज्ञान शास्त्र पढा परन्तु किया नहीं, जब ऐसा परमात्मा, ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर उसे विकार की एकत्वता टूट जाती है अर्थात् विकार का परभाव का त्याग हो जाता है, उसे त्याग हो गया होगा। दृष्टिमें से त्याग हो गया। फिर स्वरूप की जितनी स्थिरता करता जाये, उतनी अस्थिरता मिटती जाती है। ऐसा न हो तो उसने शास्त्र-वास्त्र कुछ नहीं जाना और उसका सार है, वह नहीं समझा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

*

''मृत्यु महोत्सव''

देहत्याग के समय ज्ञानी के पुरुषार्थ को प्रदर्शित करता हुआ पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन का अंश

जब शारीरिक असाता हो तब मुमुक्षुको तो बिलकुल घबराने जैसा नहीं है। उसे तो नया विचार उत्पन्न होना चाहिए कि, अच्छा है इस बार तो थोड़ा प्रयोग करनेका विशेष अवसर प्राप्त होगा। अरेरे! ऐसा हो गया, वैसा हो गया और ये (असाता) छूटे तो अच्छा है जल्दसे काम पर लगे और थोड़ा आराम भी रहे तो थोड़ा ठीक महसूस हो। इसप्रकारकी आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। भले ही पूर्वकर्मके उदय अनुसार असाता आओ और यदि न आये तो जानबूझकर असाताको उत्पन्न करते हैं आहार आदिके द्वारा। ये बाहरमें उपवास आदि क्यों करते हैं? वह भी तो प्रयोगका विषय है। जिससे क्षुधाकी असाता उत्पन्न होती है, उसवक्त प्रयोग करते हैं। वह ऐसे कि मेरे ज्ञानवेदनमें असाताका अनुभव न करुँ। ऐसा है, ठीक! अब ऐसी स्थितिमें असाताको बुरी माननेकी तो बात ही कहाँ रही? जैसे मानो ये न आये तो अच्छा। ऐसा द्वेष करनेका तो प्रकार ही नहीं रहता। अतः इसी वजहसे 'रत्नकरंड श्रावकाचार' जैसे आचारके ग्रंथमें समंतभद्रआचार्यने ऐसा कहा कि, ज्ञानियोंके लिए मृत्युका काल मृत्युका महोत्सव है। जगतमें तो जिसका नाम सुनते ही लोग अतिशय भयभीत हो जाते हैं, छातीमें दुःखने लगता है, कुछएक तो बेभान हो जाते हैं न! जबकि ज्ञानियोंको तो वह मृत्यु महोत्सव है, क्योंकि वह असाताका तीव्रसे तीव्रतम उदय है। प्राण छूटनेके समय ऐसी असाता होती है कि जिसके घेरेमें विस्मृति इतनी हो जाती है कि जीव जब नया भव धारण करता है तब पिछले भवमें कहाँ था? कैसा था? इसका कोई अतापता नहीं रहता। इतनी एक ही क्षणमें विस्मृति आ जाती है। अपने चलते हुए अनुभवमें इतनी तीव्र असाताकी वेदनामें से पसार होनेकी तक केवल मृत्युके समय ही होती है। अतः जितनी असाता तीव्र उतना ही पुरुषार्थ तीव्र करके असातासे भिन्न होनेका अवसर भी उस वक्त ही प्राप्त होता है। अतः ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि, यह तो हमारे लिए महोत्सवका काल है। हमारे आनंदके महोत्सवको, पुरुषार्थके महोत्सवको विशेष उग्रतासे मनानेका यह काल है। महोत्सवमें लोग क्या करते हैं उछल-उछलकर जीव बाहरके महोत्सवमें राग करता है। यहाँ पर महोत्सवमें आत्मा उछल-उछलकर अंतर्मुखताका पुरुषार्थ करता है। अतः इसे महोत्सवका नाम दिया। और ऐसे अनेकानेक ज्ञानी होते हैं कि, जिन्हें पता चल जाता है कि, अब इस देहके छूटनेका काल नज़दीक है। अतः वे तेज़ीसे पुरुषार्थमें परिणमित हो जाते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री इसके प्रसिद्ध द्रष्टांत हैं। हालाँकि सभी ज्ञानियोंकी ऐसी ही दशा होती है और वे तब सावधान हो जाते हैं।

मुमुक्षुः- वे उस वक्त क्या करते हैं?

पू. भाईश्रीः- आत्माको ज़ोर से पकड़ते हैं।

जैसे छोटा बच्चा अपनी माँ की साड़ीके पल्लुको कहीं बिछड़ न जाऊँ इस भयवशात् मज़बूतीसे पकड़ता है, वैसे ज्ञानी जैसे ही असाताका ऐसा तूफान परिणमनमें शुरु होता है कि ज़ोरसे अपने आत्माका अवलंबन ले लेते हैं।

तूफानमें ही अपनी ताकतका प्रयोग करेंगे न! हालाँकि कुछएक ज्ञानी निर्विकल्प उपयोगके कालमें देहका त्याग करते हैं। शुद्धोपयोगके कालमें उनका देहांत होता है।

*

सम्यक्त्व क्या है?

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

विश्व के सभी दर्शनों के तत्त्वज्ञान में इस विषय का कोई प्रकरण देखा नहीं जाता। अतः यह जैन दर्शन का एक अनूठा प्रकरण है। और जैन दर्शन का रहस्यभूत भी है। पूर्व के अनेक आचार्यो और ज्ञानियों ने इस विषय पर भिन्न भिन्न प्रकार से संकेत किया है। इसलिये यह समझा जाता है। सर्वथा वचनगोचर नहीं होने से यह वचन अगोचर भी कहा जाता है। परन्तु कथंचित् वचनगोचर है। यह बात इसके नामाभिधान से समझी जाती है। परन्तु यह ज्ञानगोचर है। अगर ऐसा नहीं होता तो इसका निर्देश होना ही अशक्य रहता।

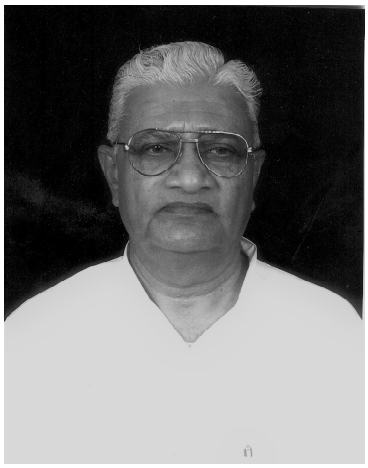

पंचाध्यायी उत्तरार्ध की निम्न गाथा यहाँ पर उल्लेखनीय है।

सम्यकत्वं वस्तुतः सूक्ष्ममस्ति वाचामगोचरम्।
तस्माद वक्तुं च श्रोतुं च नाधिकारी विधिक्रमात।।४००

गाथार्थ :- सम्यक्त्व वस्तुतः सूक्ष्म है। (बहुभाग) वचनों के अगोचर है। इसलिये विधिपूर्वक कहने के लिये और सुनने के लिये कोई भी अधिकारी नहीं है।

सम्यक्त्व का यह विषय अति सूक्ष्म होने से लोक में हंमेशा रहस्यभूत रहा है। फिर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रयोजनभूत होने से यहाँ पर इस विषय पर प्रकाश डालने का यथाशक्ति प्रयास किया गया है।

सम्यक्त्व प्रकट होने पर सभी गुणों का आंशिक शुद्ध और आंशिक आत्मसन्मुख परिणमन होने लगता है। अतः परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस बात को सूत्र निबद्ध की है। 'सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व'

मूल में सम्यक् शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। और यह शब्द आत्माभिमुख ऐसी दिशासुचकपना का द्योतक है। सम्यक्त्व का जैन संप्रदाय में रूढि अर्थ सत्य और उत्तम प्रचलित है। जिससे इसकी पहचान सरल होवे।

सम्यक्त्व प्रकट होने से आत्मा के अन्य मुख्य गुणों के परिणमन को यह विशेषण प्रयोग किया जाता है। जैसे कि सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् पुरुषार्थ इत्यादि।

प्रथम सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग के काल में प्रकट होता है। परन्तु सम्यक्त्व को शुद्धोपयोग के साथ समव्याप्ति भी है और विषम व्याप्ति भी है। (पंचाध्यायी उत्तरार्ध) अर्थात् सम्यक्त्व शुद्धोपयोग के काल में रहता है और शुभ-अशुभ (अशुद्ध) उपयोग के काल में भी रहेता है।

यहाँ पर सम्यक्त्व की अनेक पहलू से चर्चा का प्रसंग है। तब उसके उत्पन्न होने के कारण की भी थोडी चर्चा आवश्यक है। क्योंकि सम्यक्त्वरूपी कार्य का कारण मुमुक्षु की भूमिका में होता है। इसलिये ऐसे कारण संपन्न मुमुक्ष को सम्यक् सन्मुख (परिणामवाला) मुमुक्षु कहा जाता है। और मुमुक्षु की भूमिका में ज्ञान ही एकमात्र साधन है। इस विषय में पंचाध्यायी उत्तरार्ध की ४०१ गाथा दृष्टव्य है।

प्रसिद्धं ज्ञानमेवैकं साधनादिविधौ चितः।

स्वान्भूत्येनहेतुश्य तस्मात्तत् परमं पदम।।

गाथार्थ :- आत्मा की (मुमुक्षु की भूमिका में) साधनादि विधि में ज्ञान ही एक प्रसिद्ध (मुख्य साधन) है। और (ज्ञान ही) स्वानुभूति का एक मात्र कारण होने से वह परमपद है।

इसप्रकार प्रथम स्वानुभूति के काल में सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है अतः सम्यक्त्व का कारण भी ज्ञान ही लेना चाहिये। यह ज्ञान मुमुक्षु की भूमिका में भेदज्ञान का प्रयोगात्मक प्रयासरूप प्रकार है। जहाँ अंशतः राग का (राग के अवलंबन का अंशतः) अभाव करके ज्ञान में आत्म स्वरूप का निश्चय किया जाता है। यहाँ पर जितना अनंत महिमावंत आत्मस्वभाव है उसका भावभासन होता है। और भावभासन होने से इसकी उतनी ही महिमा आने लगती है। और यही स्वरूपमहिमा की (डिग्री) तारतम्यता बढ़ते-बढ़ते स्वरूपाकार निर्विकल्प अवस्था होती है। अतः स्वरूप की अत्यंत अत्यंत महिमा वही सम्यक्दर्शन है।

परिणामों के आश्रय अवलंबन की अपेक्षा से त्रिकाल भूतार्थ स्वभाव का आश्रय ही सम्यग्दर्शन है। जिसका संकेत समयसारजी की ११ वी गाथा में श्रीमद् कुंदकुंदाचार्यदेव ने किया है।

इस प्रकार सम्यक्त्व अंतर्मुख ज्ञान में ही जाना जाता है। अंतर्मुख होकर के राग का एक सूक्ष्म कण को भी अपने में मिलावट होने नहीं दिया। और अनादि के राग के एकत्व के तोड़करके अध्यास का भी त्याग उसीका नाम सम्यक्त्व है अतः जो भिन्न स्वरूप है ऐसे परद्रव्य और परभाव को भिन्नरूप से अनुभव करना वही सम्यक्त्व है।

अनुभव प्रकाश में पूज्य श्री दीपचंदजी कासलीवाल लिखते हैं 'जहाँ जहाँ ज्ञान वहाँ वहाँ मैं ऐसा दृढ़ भाव सम्यक्त्व है'। अर्थात् ज्ञान सामान्य में-अनुभूतिरूप ज्ञान में दृढ़ भाव से अहंपना होने से स्वरूप में अभेदता सधती है। जिसको ज्ञानी पुरुष सम्यक्त्व कहते हैं।

सम्यक्त्व का विवेचन बहुभाग ज्ञान प्रधानता से होता है। और यह अनेक पहलू से होता है। जिसके कुछ दृष्टांत का यहाँ पर उल्लेख किया जायेगा। जैसेकि विभाव की अत्यंत विपरीतता का ज्ञान में भासित होना वह ज्ञान का सम्यक्त्व है। अपने अविपरीत स्वभाव से प्रतिपक्षरूप स्वभाव जो जो परिणाम में होता है वह सम्यक्ज्ञान में स्पष्टतया मालूम पड़ जाता है।

पुनः जो ज्ञान प्रमाण हुआ वह सम्यक् है। क्योंकि प्रमाणज्ञान में ही सामान्य-विशेष का युगपत अनुभव होता है। इसप्रकार स्वानुभव प्रमाणज्ञान ही सम्यक्ज्ञान है। ज्ञान की सन्मुखता के और भी अनेक पहलू है जैसे कि स्वानुभवी मोक्षमार्गी धर्मात्मा को ऐसा अनुभव रहता है कि 'मेरा जो ज्ञान है वह किसी भी कर्म के उदय के आक्रमण के वक्त अपना ज्ञानत्व छोड़ता नहीं है। ऐसा अनुभव सम्यक् है। इस सम्यक्त्व का ऐसा प्रभाव है। मोक्षमार्गी को प्रतिसमय अनंतगुण विशिष्ट आत्मभाव वर्धमान होता रहता है। और इसीके अनुपात में अपनी आत्मा निर्मल होती जाती है और द्रव्यकर्म की निर्जरा होती रहती है।

पुनः सम्यक्दर्शनपूर्वक खिला हुआ ज्ञान अपने प्रयोजन में साधक होने से सम्यक् है।

पुनः भूतार्थ (निज परमात्मस्वरूप) आश्रित नवों तत्त्वों का ज्ञान वह सम्यक्त्व है। नवों तत्त्वों का तत्त्वदृष्टि से भिन्न-भिन्न स्वरूप होने पर भी एक द्रव्यमयपना के कारण से (एक द्रव्यमयपना एकत्व शक्ति के कारण से है)' नवों तत्त्वों में एक चैतन्य ज्योति अखंड भाव से रही हुई है जो सम्यक्दृष्टि जीव के ज्ञान का विषय होती है।

पुनः स्वरूप का स्वयं के ज्ञान में-स्पष्टरूप से ग्रहण होना वही ज्ञान की सम्यक् स्पष्टता है। (विकल्पात्मक बाह्यज्ञान में न्यायादिक की स्पष्टता होना यह वास्तविक स्पष्टता नहीं है।)

स्वरूपदृष्टि स्वरूप को देखकर के स्वयं की महिमा के कारण से स्वरूप में अभेद हो जाये यह दृष्टि का

सम्यक्त्व है।

पुनः अनंतगुण समृद्ध पूर्ण पर्याय को भी पर के स्थान में गिननेवाली दृष्टि सम्यक् है।

सम्यक्त्व के और भी कुछ रूप है जो दृष्टव्य है।

व्यवहार का व्यवहार के स्थान में निषेध नहीं करना वह सम्यक् है और साथ ही व्यवहार का निश्चय के स्थान में निषेध करना वह सम्यक् है। पंचाध्यायी परमागम में व्यवहार के निषेध को ही निश्चय का स्वरूप नास्ति से बतलाया है। क्योंकि निश्चय आत्मस्वरूप वचन अगोचर है। वहाँ यही अभिप्राय है। परन्तु मोक्षमार्ग में व्यवहार के स्थान में सद्भूत और असद्भूत दोनों प्रकार के व्यवहार का सम्यक् प्रकार से निरूपण किया गया है।

आत्मा के सर्व गुणों का स्वरूपाकार परिणमता हुआ अंश वह परिणमन का सम्यक्त्व है।

अनंत स्वसंवेदनपूर्वक परिपूर्ण अंतर्मुखता अभेदरूप से जिनेन्द्र परमात्मा में दिखाई देना वह सर्वज्ञ का सम्यक् प्रकार से दर्शन है।

शास्त्र स्वाध्याय करनेवाले को भेदज्ञानपूर्वक भिन्न, एकांत शुद्ध ज्ञानमय आत्मा का वेदन होना वह शास्त्र स्वाध्याय का सम्यक् फल है।

जिनागम के सर्व कथन में अथवा ज्ञानीपुरुष के श्रीमुख से प्रवाहित सर्व वचन में आत्मकल्याण का आशय समाविष्ट है। एक परमाणु से लेकर यदि ब्रह्मांड का विवरण और मेषोन्मेष की क्रिया से लेकर शुक्ल ध्यान की सभी बातें एक आत्मकल्याण होने के लिये कही है। अतः यह वचन सम्यक्ता है। जिसका आधार कथन करनेवाले की परिणमन की सम्यक्ता है।

यह सम्यक्त्व का प्रभाव है कि सम्यक्त्वी किसी भी प्रकार का कथन करता है जो पारमार्थिक हेतु वश होता है। और इस कारण से किसी भी मुद्दे पर अधिक वजन देता है परन्तु संतुलितता खोके नहीं (सम्यक्त्व के अभाव में ऐसा ही कथन एकांतपना धारण करता है) अतः जहाँ सम्यक् एकांत है वहाँ ही सम्यक् अनेकांत है।

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की समीक्षा प्रतिपक्षपना के कारण से करने योग्य है।

परद्रव्य और परभाव में अपनापन वह मिथ्यात्व है तो परद्रव्य और परभाव में परपना का भाव वह सम्यक्त्व है।

परद्रव्य में और राग का कर्तापना जो मिथ्यात्व है तो परद्रव्य और राग का ज्ञातापना सम्यक्त्व है।

परद्रव्य की आधारबुद्धि मिथ्यात्व है जबकि स्वद्रव्य की आधारबुद्धि वह सम्यक्त्व है।

परद्रव्य में सुखबुद्धि मिथ्यात्व है तो स्वद्रव्य में सुखबुद्धि सम्यक्त्व है।

अंत में यह उल्लेखनीय है कि सम्यक्त्व दो काम करता है - एक श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और पुरुषार्थ के परिणमन मे विपरीतता होने नहीं देता और दूसरा नये कर्म के आश्रव को रोक लेता है। अतः सम्यक्त्व स्वयं संवर है।

मोक्षमार्ग के यह सम्यक्त्व के अलावा, इस सम्यक्त्व के कारणभूत जो भूमिकायें हैं उसमें कार्य का कारण में उपचार करके मुमुक्षु की भूमिका का सम्यक्त्व कृपालुदेव राजचन्द्रजी ने बताया है। जो निम्न प्रकार है।

मूल में चैतन्यमें से उत्पन्न भावना, यानी राग-द्वेषमें से नहीं उत्पन्न हुई भावना अवश्य सफल होती है। जैसे निश्चय मोक्षमार्ग के परिणाम उदय के साथ जुड़ते नहीं अतः अनुदय परिणाम है, वैसे इस प्रकार की भावना किसी भी अनुकूल-प्रतिकूल उदय के साथ जुड़ती नहीं है। जो भविष्य में होनेवाले मोक्षमार्ग के अनुदय परिणाम सदृश्य होने से मोक्षमार्ग में कारणभूत होकर के परिवर्तित हो जायेगी।

सजीवनमूर्ति की पहचान होने से उनके वचन की प्रतीति उनके वचन को आज्ञा समझकरके रुचिपूर्वक उसका अनुसरण करना ऐसी आज्ञारुचि और उनकी

स्वच्छंद निरोध भक्ति कि जिस भक्ति में भक्ति का अहंभाव भी नहीं होता है। ऐसे परिणाम परमार्थ सम्यक्त्व का प्रत्यक्ष कारण होने से इस भूमिका का यह बीजभूत सम्यक्त्व कहा गया है। (आत्मसिद्धि गाथा :१७)

जिसको सजीवनमूर्ति की पहचान होती है उसको निष्पक्षरूप से अपने परिणाम का और दोषों का अवलोकन का प्रयोग चालू होता है और इस प्रयोग के दौरान अपने विपरीत अभिप्राय मिटते जाते हैं और अविपरीत अभिप्राय बनते जाते हैं। इस प्रकार चारों पड़खों से यथार्थता उत्पन्न होती है। जो यथार्थता आगे जा करके सम्यक्त्व में परिवर्तित होती है। अतः आत्मार्थी का यथार्थ परिणमन कारण है और सम्यक्त्व कार्य है।

इस प्रकार के यथार्थ परिणमन में जब आत्मस्वरूप की पहचान होती है तब स्वरूप का भावभासनपूर्वक स्पष्टता निश्चय होता है। इस प्रकार के निश्चय के साथ निश्चयबल पैदा होता है और अनंत महिमावंत परम पदार्थ परमात्मतत्त्व की उत्कृष्ट महिमा और अभेद रुचि प्रकट होती है। ऐसी सम्यक्त्व सन्मुख भूमिका परमार्थ सम्यक्त्व की अंगभूत होने से सम्यक्त्व का साक्षात् कारण है। अथवा उक्त परिणाम सम्यक्त्व का साक्षात्कार करा देगा।

अंत में सम्यक्त्व की स्तुति-प्रशंसा करते हुए-

(१) अनंत जन्म-मरण को कोई रोकनेवाला है तो एक सम्यक्त्व ही है।

(२) सम्यक्त्व स्वरूप की भ्राँति को पैदा होने नहीं देता !

(३) सम्यक्त्व एक बलवान यौद्धा है जिसके तेज से सर्व कर्म दूर से ही पीठ दिखाकर भगने लगते हैं और सम्यक्त्व ही अनंत गुणों को प्रकट होने का मूल है।

ॐ शांति

*

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के समाधिदिन (चैत सुदि ५) के उपलक्ष में तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम

१) चैत सुदि त्रीज, शक्रवार (दि.२४-३-२३) से पांचम, रविवार (दि.२६-३-२३)
सुबह : ७.०० से ८.०० पू.भाईश्री ऑडियो प्रवचन
स्थल : **'ज्ञानमात्र'** समाधि मंदिर, भावनगर
१०.०० से ११.३० मंडल विधान पूजन
स्थल : दिगंबर जैन मंदिर, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर
दोपहर : ४.३० से ५.३० पू. भाईश्री गुणानुवाद
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
रात्रि : ८.०० से ९.०० पू. भाईश्री विडीयो प्रवचन
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
२) चैत सुदि पांचम, समाधि दिन प्रातःकाल ४.०० से ४.३० वैराग्य भक्ति एवं श्रद्धांजली
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित 'अनुभव संजीवनी'में से सम्यक्त्व विषयक चुने हुए वचनामृत

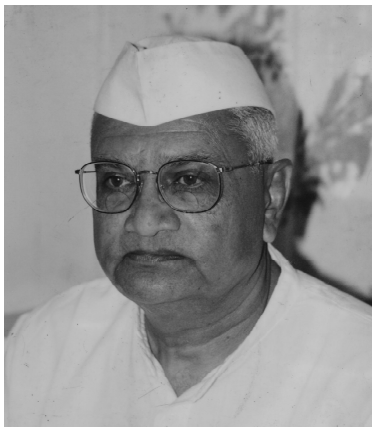

सम्यक्श्रद्धान वह निर्मल आत्मपरिणाम है जो कि संयमकी वृद्धिका कारण है। (श्रीमद्जी) (१७)

*

'दंसण मूलो धम्मो'- श्रीमद् भगवान कुंदकुंदाचार्यका यह गंभीर वचनामृत - सूत्र सिद्धांतरूप है। दर्शन अर्थात् श्रद्धान। आत्माके सभी अनंतगुणोंमें - यह सूत्र श्रद्धा गुणकी विशिष्टता का दर्शक है। उसमें बहुत गंभीरता है। वास्तविकरूपसे 'दर्शन' प्राप्त - अनुभवी महात्मा (ही) उसका यथातथ्य अनुभव करते हैं - क्योंकि उसमें वचन अगोचर बहुत कुछ है। जिस दर्शन शक्तिसे मोक्षमार्गका अंकुर फूटता है; सर्व गुणांश स्वयं सम्यक् होते हैं, जिसका इस प्रकारसे मूलअंगरूपमें परिणमन करने पर - वर्तन करने पर मोक्षमार्ग वृद्धिगत होकर संपूर्ण शुद्धतारूप मोक्ष अनिवार्यरूपसे अवश्य होता ही है; जिसके कारण सिद्ध भगवंत सिद्ध पर्यायमें अनंतकाल टिकते हैं। ऐसा दंसण - मूल धर्म / कल्याणमूर्तिका सम्यक् प्रकारसे सेवन करने योग्य है। यह एक गुण ऐसा है कि जो शुरूसे अपनी पूरी - अनंत शक्तिसे परिणमन करता है। और अन्य समस्त गुणोंकी निर्मलता होनेमें / बढ़नेमें निमित्त होता है। (१०५)

*

* दर्शनमोहके कारण परमें स्वपनेका भाव होता है। तब यदि जीव इसमें मिठास वेदता है तो मोह-वैरी प्रबल होता है, और जीवकी शक्तिका घात होता है। परिणामतः चौरासी लाख योनिके दुःख प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रबल अनिष्टको सम्यक्त्व रोकता है।

* दर्शनमोह ही जीवको बहिर्मुख रखता है, उसका घात करके सम्यक्त्व जीवको अंतर्मुख करता है और अमृतरसका आस्वादन कराता है।

* दर्शनमोहने ही स्वयंको - अनंत ज्ञानादिगुणके स्वामीको भुलावेमें डाला है। सम्यक्त्व इस भुलावेमें फिर आने नहीं देता।

* इसप्रकार सम्यक्त्व सर्व अवगुण भावोंका प्रतिकार करनेवाला बलवान योद्धा है। जिसके तेजसे सर्व कर्म दूरसे ही पीठ दिखाते हुए भागने लगते हैं।

* दर्शनमोहके कारण अनित्य ऐसे शरीरादि संयोगमें नित्यता मानी जाती है। देहके नौ-द्वारसे प्रवाहित पदार्थोंमें आसक्ति होती है; ऐसे अज्ञान / विपरीतभावको उत्पन्न होनेसे - सम्यक्त्व रोकता है। संक्षेपमें सर्व अवगुणोंका रोधक और सर्व गुणोंके प्रगट होनेका मूल सम्यक्त्व है। (४४८

सर्वज्ञ वीतरागदेवका स्वरूप पहचाननेसे मोहका क्षय होवे ही होवे - ऐसा नियम है। परन्तु किसी प्रगट कारण (प्रतिमाजी अथवा शास्त्रजी)के अवलंबनपूर्वक, यदि सर्वज्ञको सम्यक्त्वभावसे भी पहचाने जाये, तो इससे जीव मोक्षमार्गके सन्मुख अवश्य होता है।

प्रत्यक्ष सर्वज्ञ परमात्मा, अथवा प्रत्यक्ष सत्पुरुष या मुनिराजके समागम योगमें (यदि) स्वभावकी सम्यक्ता भासित हुई, तो इससे जीव अवश्य मोक्षमार्गके सन्मुख होता है, वह इसका महत् फल है। जो अपूर्व है। उत्कृष्ट पात्रतावान अथवा सच्ची मुमुक्षुता प्रगट होने पर ही सफलता प्राप्त होती है। (८०८)

*

अध्यात्ममार्गमें ज्ञानकी साधन अपेक्षासे प्रधानता है। ज्ञानवेदनका आविर्भाव होनेसे स्वान्भूति समुत्पन्न होती है, स्वान्भूति सम्यक्त्व उत्पन्न होनेका कारण है। और सम्यक्त्व होते ही आत्माके अनन्त-सर्वगुण सम्यक् होकर - आत्माभिमुख होकर, जात्यांतर होकर, परिणमन करने लगते हैं, जो भव निवृत्तिका - परम कल्याणका एकमात्र कारण है। इसलिए सम्यक्त्वकी अनन्त महिमा श्री जिनने गायी है। सर्व धर्मात्माओंने सम्यक्भावकी अभिवंदनाकी है, उसे अभिनंदित किया है। (१११०)

*

जिज्ञासा :- कृपालुदेवके वचनामृतमें ऐसा आता है कि सर्वज्ञको भी सम्यक्दृष्टिके रूपमें पहचाननेका फल महत् (बहुत बड़ा) है - तो वह उनका कहनेका आशय क्या है ?

समाधान :- प्रथम तो सजीवनमूर्तिके प्रत्यक्ष योग बिना अंतर परिणतिके दर्शन नहीं होते और (अंतर परिणतिकी) ऐसा हुए बिना पहचान नहीं होती। तीन प्रकारसे (स्थितिमें) सजीवनमूर्ति बिराजमान हैं, सर्वज्ञ, निर्ग्रंथ मुनिराज और सम्यक्दृष्टि श्रावक। प्रथम दो पदधारीकी बाह्यदशा अत्यंत त्यागरूप होनेसे बाह्यदृष्टिवानको भी शंकाका अवकाश नहींवत् है, परन्तु उनकी अंतरंग वीतराग परिणति अत्यंत सूक्ष्म है, जो कि मुमुक्षुकी भूमिकामें पहचानी जाये / पकड़में आये, ऐसी क्षमता प्रायः उसमें नहीं होती; (जबकि) सम्यक्दृष्टिकी परिणतिको उत्कृष्ट - उत्तम मुमुक्षु पहचान सके वैसी है, परन्तु बाह्यदशामें शंका उत्पन्न हो जाये ऐसी परिस्थिति बहुत है। इसी वजहसे अनन्तकालमें अनन्तबार तीनों सजीवनमूर्तिका योग हुआ है फिर भी आज तक पहचान (प्रथम समकित) नहीं हो पायी।

तीनोंमें सम्यक्त्व सामान्य है, इसलिए यदि इनमेंसे एक (भी) सम्यक्त्वरूपमें पहचाननेमें आये तो तीनोंकी श्रद्धा हो जाये। (और) वीतरागतासे पहचान हो सकती है, ऐसा सिद्धांत यदि ग्रहण किया जाये तो वह सम्यक्दृष्टिमें (वह प्रगट नहीं दिखनेसे) अव्याप्तिका दोष आता है, जबकि सम्यक्त्वमें वैसा दोष नहीं आता। अतः सर्वज्ञको भी सम्यक्त्वरूपमें पहचाननेका फल महत् है अर्थात् निर्वाणपद है। क्योंकि उसमें स्वभावका दर्शन है। उस स्वभावका दर्शन हुए बिना सर्वज्ञको भी सर्वज्ञरूप माननेका आत्मप्रत्ययी कोई फल नहीं है। ऐसा उनका कहनेका आशय है। (१६२६)

*

जिज्ञासा :- सजीवनमूर्तिको सम्यक्त्वरूपमें पहचानना, इसका मतलब क्या ? और उन्हें कैसे पहचाने ?

समाधान :- बाह्यदृष्टिवान जीवको समकित समझमें नहीं आता। (क्योंकि) सम्यक्त्व है, वह अंतरदृष्टिका विषय है और वह जीवका अंतर्मुखी परिणमन है। अंतरात्मवृत्तिवान जीवको सजीवनमूर्तिके प्रत्यक्ष समागममें तथारूप सत्संग प्राप्त होने पर व पहचाननेकी परम जिज्ञासा होने पर उनकी पहचान होती है। परिणामकी 'स्वाभिमुख दिशा' को सूचित करता हुआ यह वाचक शब्द है, उसका वाच्य भावभासनरूप होनेसे उसकी पहचान होती है। आत्मा स्वभावसे परिपूर्ण अंतर्मुख स्वभावी है। जो पूर्णदशामें प्रगट होता है और वचन अगोचर है, इसलिए कोई उसे कहनेके लिए समर्थ नहीं है, परन्तु वह ज्ञानगोचर है। सम्यक्त्व जब समझमें आता है, तब ज्ञानीके वचन व शास्त्र वचनमें निहित सम्यक् आशय ग्रहण होता है। अर्थात् प्रतिपादनकी सम्यक्ता नजरमें आती है। जिससे कहनेवालेकी पहचान होती है। (१६२७)

*

जो-जो भाव व जो-जो वचन परसन्मुखता और बाह्यदृष्टिपना छुड़ाये और जो-जो भाव अंतर्मुख हो अथवा अंतर्मुख होनेके कारणभूत हो और जो-जो वचन अंतर्मुख होनेके कारणभूत हो, वे सर्व भाव व वचन (स्वानुभवी पुरुषके) सम्यक् हैं। - इन लक्षणोंसे अति सूक्ष्म ऐसे सम्यक्त्वकी परख करने योग्य है। (१६२८)

*

जिज्ञासा :- पंचाध्यायी (उतरार्ध) गाथा - ४००में सम्यक्त्वको अति सूक्ष्म कहा है, इसलिए उसे कहा नहीं जा सकता - ऐसा (वहाँ) कहा है, तो उसमें परमार्थ क्या है ?

समाधान :- वस्तुतः सम्यक्त्व अति सूक्ष्म है ही और इसीलिए सुगमतासे समझमें नहीं आता है। सम्यक्त्व ज्ञानकी निर्मलतासे समझमें आता है, और अति सूक्ष्मताके कारण वचन अगोचर है, ऐसी वस्तुस्थिति है। अत: ऐसा परमार्थ लक्षित होता है कि सम्यक्त्व या सम्यक्त्वी, यह कहने - सुननेका विषय नहीं है - परन्तु ज्ञानगोचर करनेका विषय है। अतः उस प्रकारसे ही (पहचाननेका) प्रयत्न करना उचित है, अन्यथा प्रकारसे प्रयत्न करना उचित नहीं है। (१६६०)

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (मार्च-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस समाधि विशेषांक की समर्पण राशि स्व. शैलेषभाई देसाई के स्मराणार्थ हस्ते श्रीमती मीताबहिन देसाई मुमुक्षु परिवारकी ओर से साभार प्राप्त हुआ है। अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

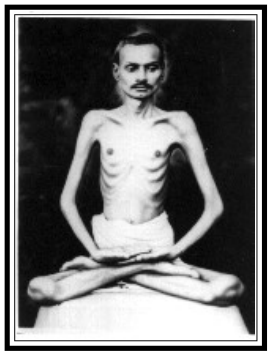

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३३५

बंबई, फागुन सुदी १०,बुध,१९४८

उदास-परिणाम आत्माको भजा करता है। निरुपायताका उपाय काल है।

पूज्य श्री सौभाग्यभाई,

समझनेके लिये जो विवरण लिखा है,वह सत्य है । जब तक ये बातें जीवकी समझमें नहीं आती,तब तक यथार्थ उदासीन परिणतिका होना भी कठिन लगता है ।

'सत्पुरुष पहचाननेमें क्यों नहीं आते?' इत्यादि प्रश्न उत्तरसहित लिख भेजनेका विचार तो होता है;परंतु लिखनेमें चित जैसा चाहिये वैसा नहीं रहता, और वह भी अल्प काल रहता है, इसलिये निर्धारित लिखा नहीं जा सकता।

उदास-परिणाम आत्माको अत्यंत भजा करता है।

किसी अर्धजिज्ञासु पुरुषको आठेक दिन पूर्व एक पत्र भेजनेके लिये लिख रखा था। पीछेसे अमुक कारणसे चित्त रुक जानेसे वह पत्र पड़ा रहने दिया था जिसे पढ़नेके लिये आपको भेज दिया है।

जो वस्तुतः ज्ञानीको पहचानता है वह ध्यान आदिकी इच्छा नहीं करता, ऐसा हमारा अंतरंग अभिप्राय रहता है।

जो मात्र ज्ञानीको चाहता है, पहचानता है और भजता है, वही वैसा होता है, और वह उत्तम मुमुक्षु जानने योग्य है।

उदास परिणाम आत्माको भजा करता है।

चित्तकी स्थितिमें यदि विशेषरूपसे लिखा जायेगा तो लिखूँगा।

नमस्कार प्राप्त हो।

*

पत्रांक ३३६

बंबई, फागुन सुदी ११, बुध,१९४८

यहाँ भावसमाधि है।

विशेषतः 'वैराग्य प्रकरण' में श्रीरामने जो अपनेको वैराग्यके कारण प्रतीत हुए सो बताये हैं, वे पुनः पुनः विचारणीय हैं।

खंभातसे पत्रप्रसंग रखे। उनकी ओरसे पत्र आनेमें ढील होती हो तो आग्रहसे लिखे जिससे वे ढ़ील कम करेंगे। परस्पर कुछ पृच्छा करना सूझे तो वह भी उन्हें लिखें।

पत्रांक ३३७

बंबई, फागुन सुदी ११।।, गुरु, १९४८

चि. चंदुके स्वर्गवासके समाचार पढ़कर खेद हुआ। जो जो प्राणी देह धारण करते हैं वे वे प्राणी उस देहका त्याग करते हैं, ऐसा हमें प्रत्यक्ष अनुभवसिद्ध दिखायी देता है; फिर भी अपना चित्त उस देहकी अनित्यताका विचार करके नित्य पदार्थके मार्गमें नहीं जाता, इस शोचनीय बातका वारंवार विचार करना योग्य है। मनको धैर्य देकर उदासीको निवृत्त किये बिना छुटकारा नहीं है। खेद न करके धैर्यसे उस दुःखको सहन करना ही हमारा धर्म है।

इस देहका भी जब-तब ऐसे ही त्याग करना है, यह बात स्मरणमें आया करती है, और संसारके प्रति वैराग्य विशेष रहा करता है। पूर्वकर्मके अनुसार जो कुछ भी सुखदुःख प्राप्त हो, उसे समानभावसे वेदन करना, यह ज्ञानीकी सीख याद आनेसे लिखी है। मायाकी रचना गहन है।

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी) के स्वामित्वका विवरण फोर्म नं.४, नियम नं. ८

पत्रका नाम	:	'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी)
प्रकाशन स्थल	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक	:	अजय ऑफसेट, १५/सी बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८०००४
प्रकाशकका नाम	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
संपादकका नाम	:	श्री राजेन्द्र जैन, (भारतीय), ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
स्वामित्व	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

मैं, राजेन्द्र जैन, एतद द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी और विश्वास अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

ता. ३१ मार्च, २०२३ राजेन्द्र जैन

मेनेजिंग ट्रस्टी, श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १३-C

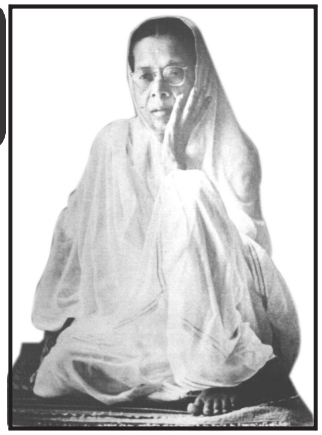

मुमुक्षु :- ..तीव्र अशुभभाव भी नहीं होते, ऐसा सादा नित्य क्रम होता है। उसमें प्रयोग की रीत आती नहीं, करने की मेहनत करते हैं अनुभव में जाने हेतु, आत्मानुभव करने हेतु, किन्तु उस वक्त ऐसे तीव्र भाव नहीं होनेपर भी अनुभव में उतरना बन नहीं पाता अर्थात् प्रयोग की रीत आती नहीं, समझ में नहीं आती, अन्दर उतरती नहीं, तो कैसे करना? प्रयोग कैसे करना ऐसे नित्य क्रम के वक्त, रोजाना नित्य क्रम के वक्त?

समाधान :- ऐसा है कि अपना स्वभाव पहचानने में आता नहीं। मैं स्वभाव भिन्न हूँ, वह स्वभाव पहचानने में आये, भेदज्ञान करना यह उसका मुख्य मार्ग तो वह है, द्रव्य पर दृष्टि करके भेदज्ञान करना। अमुक प्रकार के तीव्र राग के भाव नहीं होते हो, मन्द कषाय रहता हो तो भी वह अपना स्वभाव नहीं है, उससे आत्मा भिन्न है। आत्मा भिन्न है उसका ज्ञायक स्वभाव पहचानना चाहिये। स्वयं को भिन्न करना चाहिये। भले ही मन्द कषाय होते हो फिर भी इन सब भावोंसे मेरा स्वभाव भिन्न है। मैं तो ज्ञायक जाननेवाला हूँ। मैं जाननेवाला हूँ ऐसा विचार करके नक्की करे परन्तु उसे स्वभावमें से ग्रहण करे तो यथार्थ होता है। विचारसे तो नक्की करता है परन्तु अन्दर स्वभावसे ग्रहण करना चाहिये।

उसका मार्ग तो एक ही है कि स्वयं को पहचानकर, निज स्वभाव को पहचानकर भेदज्ञान करना। परन्तु अनादि की ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है कि मन्द कषाय में भी एकत्व हो रहा है। उस एकत्वसे उसे भिन्न करना कि मैं तो ज्ञायक हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ, कोई भी विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, कोई भी कार्य, कोई भी प्रवृत्ति या कोई कर्ताबुद्धि मेरा स्वभाव नहीं है। परपदार्थ के कोई कार्य में जुड़ना अथवा शुभभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो उससे भिन्न ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। मैं ज्ञायक ज्ञाता हूँ। उसका भेदज्ञान करे। मैं अनादि शाश्वत आत्मा शुद्धात्मा हूँ। ऐसा अंतरसे उसे आना चाहिये।

फिर अशुभभावोंसे बचने के लिये बीच में शुभभाव तो आते हैं, वह छूट नहीं जाते। परन्तु उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसी भिन्नत्व की श्रद्धा उसे उस क्षण भी रहनी चाहिये। (लेकिन) उस वक्त श्रद्धा रहती नहीं और एकत्व हो जाता है। इसलिये जो अनादि का है वह वैसे का वैसा चला आ रहा है। लेकिन जबतक वह

नहीं होता है तबतक उसकी रुचि, उसकी महिमा, उसके विचार करे। परन्तु उसे कार्य तो एक ही करना है-उसे भेदज्ञान करके द्रव्य पर दृष्टि करनी। करना एक ही है। लेकिन यह करना उसे कठिन हो गया है। अनादि की एकत्वबुद्धि हो रही है इसलिये। प्रयोग तो वह एक ही करना है कि मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, मैं भिन्न हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ, परन्तु वह उसे अंतरसे होना चाहिये। वह अंतरसे होता नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसे शुभाशुभ भाव जो आते हैं, वह जानने में भी आते हैं और भाषा में कहने में भी आते हैं, तो भी उसमेंसे प्रवृत्ति छूटकर स्वभाव में स्थिति नहीं होती।

समाधान :- वह खुद अंतर में करता नहीं। अनादि का जो अभ्यास है उसी में दौड़ता है। उसका प्रवाह उस ओर ही दौड़ता है। उसकी दिशा बदलती नहीं, दिशा का प्रवाह स्वयं की ओर मुड़ना चाहिये वह मुड़ता नहीं। खुद करे तो होता है। पानी का प्रवाह जो चला वह चला, स्वयं का अनादि का प्रवाह चलता है। उसमेंसे खुद स्वयं की दिशा बदले तो बदल सके ऐसा है। दिशा बदलता नहीं। स्थिर होकर मैं ज्ञाता हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। उस प्रवाह में नहीं जुड़कर मैं ज्ञायक जाननेवाला हूँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो शुद्धात्मा निर्मल ज्ञाता हूँ। ऐसे विकल्पसे नहीं लेकिन उसकी परिणति में आना चाहिये। जबतक नहीं होता तबतक पहले विकल्पसे होता है, लगनी लगे, विकल्पसे होता है, परन्तु बारंबार, बारंबार अंतरसे करता रहे, ऐसा करते-करते उसे यदि यथार्थ हो और वैसी परिणति बने तभी उसका यथार्थ मार्ग प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- परिणति होने पूर्व इसप्रकार विकल्पसे करते रहे तो चलता है?

समाधान :- विकल्पसे करता रहे लेकिन अंतरसे लगे तो होता है। विकल्पसे करता रहे , परन्तु अंतरसे लगे तो होता है। उसका मार्ग तो एक तत्त्व का यथार्थ निर्णय करना ही है। निर्णय भी वह अंतरसे मन्द-मन्द रखे और उग्रता नहीं करे तो नहीं होता। मन्द-मन्द करते-करते भी खुद उग्रता लाकर करे तो होता है। करना तो खुद को ही है। लेकिन छोड़ दे कि नहीं हो रहा है, इतना काल चला गया परन्तु होता नहीं है इसलिये नहीं होता, ऐसा करके छोड़ दे तो नहीं होता। उसके पीछे लगे तो होता है।

किसीको अंतर्मुहूर्त में होता है वह अलग बात है। वह क्वचित् होता है, अन्यथा बहुभाग अभ्यास करते-करते होता है। उसका बारंबार अभ्यास करते रहना।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

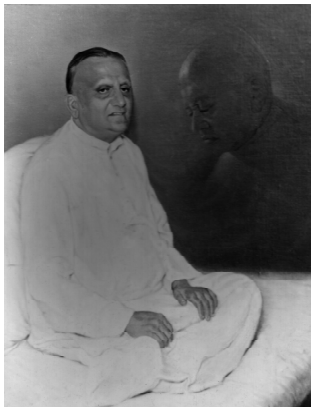

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'प्रयोजन (पर्याय अपेक्षासे कर्तव्य)' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

ज्ञानका विषय, दृष्टिके विषयका प्रयोजन साधने जितना ही लक्ष्यमें लेना ठीक है; बाकी उसका (इससे अधिक) प्रयोजन नहीं है। (प्रयोजनभूत 'स्वरूप' के अलावा जाननेमें आते हुए सभी ज्ञेयोंमें ज्ञानको अपना प्रयोजन भासित नहीं होता) १४.

*

'अपने सुख-धाममें सदा जमे रहना' बस ! - यही बात बारह अंगका एकमात्र सार है। १९२.

*

असल में आत्मा कैसे प्राप्त होवे - यही एक ध्येय होना चाहिए; दूसरी-दूसरी बातों से क्या प्रयोजन? २७३.

*

बाहर से अपना कोई प्रयोजन ही नहीं, तो बाह्य पदार्थों से तो सहज ही उदासीनपना रहे ही। २८३.

*

नित्य पड़खा और अनित्य पड़खा - ये दोनों पड़खे एक वस्तु के हैं; अब मतलब प्रयोजन-सिद्ध करने का है तो वह तो नित्य पड़खे को मुख्य करने से और अनित्य पड़खे को गौण करने से ही सिद्ध होता है। ३०९.

*

'स्वद्रव्य में जम जाना' यह एक ही कर्तव्य है, वह भी परिणाम की अपेक्षा से। 'मेरी' अपेक्षा से तो 'मैं' कृतकृत्य ही हूँ, कुछ भी कर्तव्य नहीं; 'मैं' तो अनंत वीर्य की खान हूँ। (उसमें - मेरे ऐसे स्वरूप में - 'कुछ भी करना' - यह भ्राँति है।) ३१८.

*

सब शास्त्रों का मूल तो अनुभूति पर ही आना है। ३४०.

*

मूल बात में अपेक्षा लगाता है तो मुझे तो खटकता है, (क्योंकि) उसमें जो तीखाश होती है वह टूट जाती है। अपेक्षा लगाने से ढीलापन हो जाता है। (मूल बात जोर देते वक़्त कोई अपेक्षा लगाकर, दूसरी अपेक्षा से ऐसा भी है - ऐसा कहने से तो मूल बात गौण हो जानेसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, इसलिए खटकता है।) (वस्तु अनंत सामर्थ्यवंत है। अतः उसके प्रति जोर (भींस/दबाव) आता है। परंतु वहीं दूसरी अपेक्षा खोल कर वैसे जोर को ढीला करना, वह अपेक्षा संबंधित विपर्यास है जो खटकता है।) ३५१.

*

जिज्ञासुओं के लिए निःशुल्क भेट

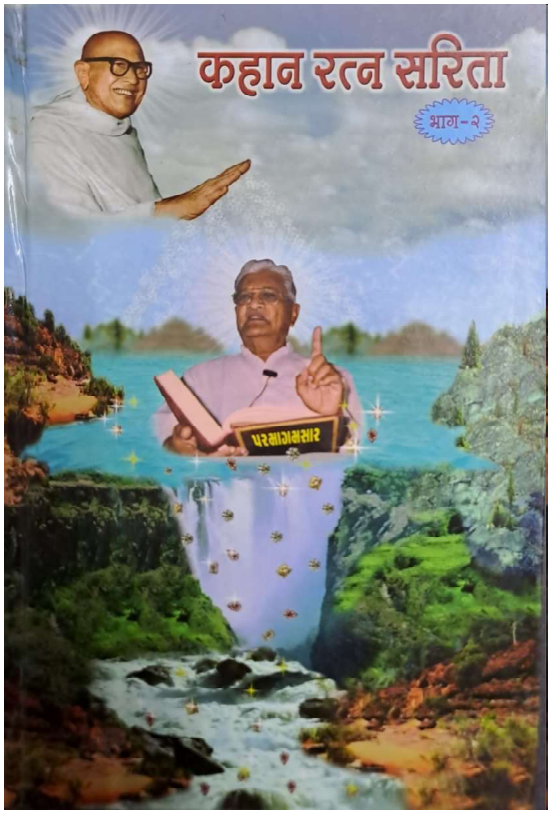

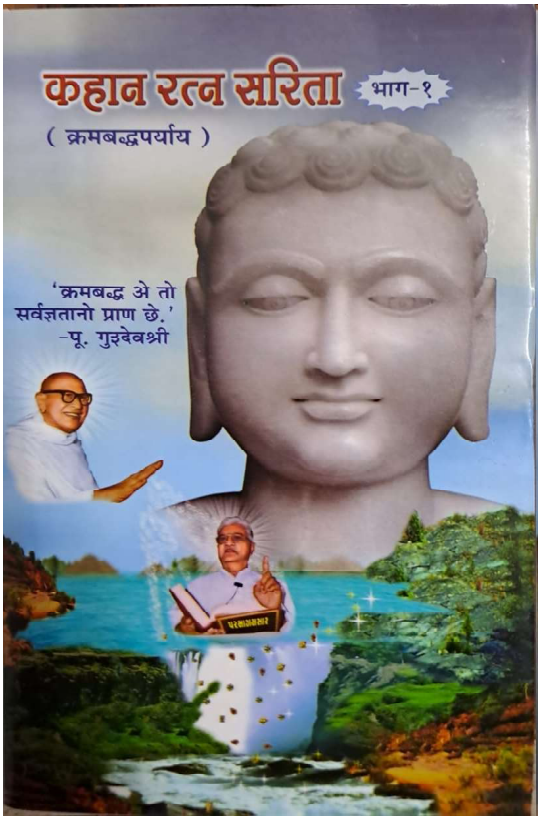

पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन की पुस्तक 'सुविधि दर्शन' को अभूतपूर्व प्रतिसाद मिला है, इसे देखते हुए उक्त दो पुस्तकों का सेट आत्मकल्याण इच्छुक जीवों को निःशुल्क भेंट दिया जायेगा। जिन तत्त्वरसिक जीवोंको इसकी आवश्यकता हो वे नीचे दिये गये वोट्सअप नंबर पर अपना नाम और पता पीनकोड़ सहित लिखकर भेजें।

१) कहान रत्न सरिता (भाग-१)

विषय-पूज्य गुरुदेवश्रीके खास-खास वचनामृत पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन

२) कहान रत्न सरिता (भाग-२)

विषय-पूज्य गुरुदेवश्रीके 'क्रमबद्ध पर्याय' के ऐतिहासिक विषय के वचनामृत पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन

संपर्क
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
नीरव वोरा
मो:●९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

शशीप्रभु समाधि मंदिर
"ज्ञानमात्र"

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041